18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 748

माई माटी छोड़ब नाही

पोटका का भूमि अधिकार आंदोलन : अस्मिता के आधार का अध्ययन

अनुषा

गाँव छोड़ब नाही
जंगल छोड़ब नाही
माई माटी छोड़ब नाही
लड़ाई छोड़ब नाही

बाँध बनाए
गाँव डुबोए
कारख़ाने बनाए
जंगल काटे
ख़दान खोदे
सैंकचुरी बनाए

जल, जंगल, ज़मीन, छोड़ब हम कहाँ-कहाँ जाईं
विकास के भगवान बता हम कैसे जान बचाईं।[1]

[1] काशीपुर में बॉक्साइट-खनन के ख़िलाफ़ आदिवासी संघर्ष के नेता भगवान माँझी द्वारा लिखित गीत की पंक्तियाँ. देखें, के.पी. शशि, 'गाँव छोड़ब नाही' (25 जून, 2009) : http:/kafila.org/2009/6/25/gaon-chodab-nahin/, देखने की तारीख़ : 21 जनवरी, 2010.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 749

इस गीत की पंक्तियों का अर्थ बहुस्तरीय है। एक तरफ़ कहता है कि भूमि एक ऐसी सत्ता है जिसका लेन-देन किसी क़ीमत पर नहीं हो सकता है। 'माई माटी' एक विशेष जुड़ाव एवं अस्मिता की अभिव्यक्ति है। अत: इसकी स्वायत्तता एवं सार्वभौमिकता का अपना ही तर्क है।[2] दूसरी तरफ़ ये पंक्तियाँ यह भी स्पष्ट करती हैं कि बाँध, कारख़ाना, ख़दान एवं अभयारण्य के आगमन से मिल कर बनी 'विकास' की गोद में लोग काफ़ी असहज महसूस कर रहे हैं। विकास का यह नया मॉडल ईश्वर की तरह सार्वभौम एवं सर्वशक्तिमान है। इन पंक्तियों में प्रश्न करने की प्रक्रिया में वही हताशा है जो ईश्वर को प्रश्नांकित करते हुए होती है।

इस पृष्ठभूमि में यह शोध-पत्र झारखण्ड के पूर्वी सिंहभूम ज़िले के पोटका प्रखण्ड के लोगों के भूमि-संघर्ष का अध्ययन है। इसमें भूमि से उभर कर आने वाली उनकी अस्मिता ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है। शोध-पत्र पूछता है कि यहाँ के लोगों को भूमि अपने अस्तित्व के लिए इतनी महत्त्वपूर्ण क्यों लगती है कि वे राज्य द्वारा किये जाने वाले भूमि अधिग्रहण को खुली चुनौती देने पर उतर आते हैं? अपने अनुसंधान में मैंने लोगों की वह अस्मिता समझने का प्रयास किया है जिसके कारण लोगों ने भूमि की सुरक्षा के लिए लम्बा आंदोलन छेड़ा। मैंने इस प्रश्न पर भी विचार किया है कि क्या पुनर्वास एवं मुआवज़े द्वारा भूमि अधिग्रहण की पीड़ा दूर की जा सकती है? क़ानून में उचित मुआवज़े द्वारा भूमि अधिग्रहण का प्रावधान है और इसके मुताबिक़ राज्य भूमि विस्थापन को आर्थिक नज़रिये से देखता है। क्या इसे विस्थापन की एक पूर्ण या संतोषजनक समझ माना जा सकता है? इस अनुसंधान में स्थानीय लोगों और भूमि के बीच बहुस्तरीय संबंधों का परीक्षण किया गया है। साथ ही बात का विश्लेषण भी है कि किस तरह सामाजिक, भौतिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक रूप से भूमि के साथ लोगों की अस्मिता जुड़ी हुई है।

पाँच भागों में बाँट कर किये गये इस अनुसंधान का पहला भाग पोटका प्रखण्ड की जनसंख्या का अध्ययन है। दूसरे भाग में भूमि अधिग्रहण का संदर्भ है जहाँ भूषण स्टील ऐंड पॉवर लिमिटेड और उसके कार्यों से जुड़े प्रश्न पूछे गये हैं। तीसरे अध्याय में भूषण स्टील द्वारा पोटका प्रखण्ड में भूमि अधिग्रहण एवं उससे जुड़े आंदोलनों की चर्चा है। चौथा अध्याय विभिन्न संदर्भ-जनित घटनाओं से यह दिखाने का प्रयास करता है कि किस तरह भूमि का प्रश्न महज़ आर्थिक न हो कर पोटका प्रखण्ड के वासियों की अस्मिता से जुड़ा हुआ है। अंतिम अध्याय समापन टिप्पणी के रूप में है।

पोटका प्रखण्ड के विशेष संदर्भ को समझ बनाने के पहले भूमि को सामान्यत: अस्मिता के रूप में देखने से संबंधित तर्कों पर एक नज़र डाली जा सकती है। भूमि को सम्पूर्ण जीवन, मूल्य व्यवस्था, संबंधों और गतिविधियों के तौर पर देखा जा सकता है। वंदना शिवा ने भूमि के विभिन्न पक्षों की चर्चा की है। उनके अनुसार भूमि जीवन है, रोज़गार देने वाली, संस्कृति का आधार, अर्थ-व्यवस्था, मानवता को बेहतर बनाने की वस्तु और विश्वव्यापी अर्थव्यवस्था का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।[3]

---

[2] यह हमें विचार-विमर्श के एक अन्य दायरे की ओर ले जाता है. इसमें हमें 'माई माटी' (धरती माता) और 'भारत माता' के बीच अंतर करने की आवश्यकता है. भारत माता की अवधारणा ने भारतीय होने की पहचान की अवधारणा तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है.

[3] देखें, वंदना शिवा (2011), 'द ग्रेट लैण्ड ग्रैब : इण्डिया'ज़ वॉर्स ऑन फ़ॉर्मर्स', जून : http://theglobalralm.com/2011/06/14/the-great-land-grab-indias-war-on-framers/, देखने की तारीख़ 19 सितम्बर, 2012.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 750

मिट्टी एक विशिष्ट तात्पर्य-सम्पन्न शब्द है। लोग इससे अपनी अस्मिता पारिभाषित करते हैं। इसीलिए तो वे कहते हैं कि 'मिट्टी हमार नाही, हम मिट्टी के हैं।'[4] दरअसल, भूमि लोगों की राजनीतिक सामुदायिकता का आधार है। लोग भूमि के माध्यम से अनेक प्रकार के आपसी संबंध, सामुदायिकता, स्वायत्तता, वैयक्तिकता और संस्थाओं की परिकल्पना करते हैं। भूमि के आईने में लोग अपनी जीविका, सम्मान, मर्यादा, स्वतंत्रता, सामुदायिक कल्याण, अर्थव्यवस्था एवं प्रशासन के स्वरूप देखते हैं। होता यह है कि भूमि के लिए किये जाने वाले संघर्ष को सामान्यत: जीविका के लिए संघर्ष के रूप में देखा जाता है, लेकिन अनेक स्तरों पर यह भूमि-संघर्ष लोगों की अस्मिता, सामाजिक उपयोगिता एवं संस्कृति से जुड़ा होता है।

एलेक्स एक्का ने आदिवासी जीवन-दर्शन एवं भूमि से उसके अत्यंत नज़दीकी संबंधों की व्याख्या करते हुए कहा है कि सिर्फ़ भूमि की ऊपरी परत ही नहीं, बल्कि भूमि का आंतरिक भाग, उसके जलस्रोत, खनिज तथा भूमि पर स्थित जंगल, वृक्ष और पक्षी आदि भी उनके हैं। अस्तित्व से जुड़ी आवश्यकताएँ एवं जीवन-निर्वाह का आधार तो भूमि द्वारा प्रदान किया ही जाता है, इसके अलावा प्रकृति के साथ अपने सहजीवी संबंधों की व्याख्या करते हुए वे यह मानते हैं कि उनके नाम के साथ जुड़े 'एक्का' या 'डुंगडुंग' जैसे शब्द भी प्रकृति से उनके जुड़ाव की अभिव्यक्ति हैं। एक्का के अनुसार झारखण्ड के स्थानीय समुदाय हर किसी को ईश्वर की संतान मानते हुए भूमि और इसके संसाधनों पर समान दावा करते हैं।[5] पोटका प्रखण्ड के लोगों ने हमें कई आख्यानों की जानकारी दी है जिनके माध्यम से इन आयामों को समझने का उपक्रम किया जा सकता है। इसके लिए इस क्षेत्र की जनसंख्या और भूमि-संघर्ष आंदोलनों को समझने की आवश्यकता है। लेख के आगे के हिस्से में हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि पिछले एक दशक में आम लोग सामूहिक रूप से कॉरपोरेट विकास के ख़िलाफ़ आवाज़ क्यों उठा रहे हैं। आख़िर झारखण्ड राज्य द्वारा उद्योगों की स्थापना और 'आर्थिक क्षेत्र' बनाने जैसी गतिविधियों को कुछ लोग नकारात्मक अर्थ में 'संसाधनों के दोहन' की संज्ञा क्यों दे रहे हैं? लोगों द्वारा अपनी ज़मीन के लिए संघर्ष की बुनियाद में आख़िर कौन से मुद्दे और किस तरह की प्रेरणाएँ काम कर रही हैं?

पोटका प्रखण्ड की जनसांख्यिकी

पोटका प्रखण्ड झारखण्ड राज्य में पूर्वी सिंहभूम ज़िले के धालभूम सम्भाग में स्थित है। प्रखण्ड का मुख्यालय हाटा मुसबानी सड़क से सात किमी और पोटका पूर्वी सिंहभूम ज़िले के मुख्यालय जमशेदपुर से 80 किमी दूर स्थित है। इस प्रखण्ड में 25 पंचायतें एवं 293 गाँव हैं। पोटका प्रखण्ड के उत्तर में जमशेदपुर प्रखण्ड है। इस पंचायत के दक्षिण में ओडीशा का मयूरभंज ज़िला है। पूर्व में मुसबानी, घाटशीला और डूमरिया प्रखण्ड है और पश्चिम में पश्चिमी सिंहभूम का राजनगर प्रखण्ड है। पोटका प्रखण्ड का सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल 1,44,208.7 एकड़ है जिसका 17,115 एकड़ हिस्सा जंगली क्षेत्र है। पूरी जनसंख्या (1,70,657) का 4.1 प्रतिशत अनुसूचित जाति और 51.20 प्रतिशत अनुसूचित

---

[4] जोहार (झारखण्ड ऑर्गनाइजेशन फ़ॉर ह्यूमन राइट्स) के घोषणा-पत्र में कहा गया है कि आदिवासी प्रकृति के साथ सामंजस्य क़ायम करके अपना जीवन व्यतीत करते हैं. वे यह मानते हैं कि धरती हमारे लिए नहीं है, बल्कि हम धरती के लिए हैं. देखें अरनब सेन और एस्थर लालहैरितपुई (2006), 'शेड्यूल्ड ट्राइब्ज़ (रिकॅगिनशन ऑफ़ फ़ॉरेस्ट राइट्स बिल) : अ व्यू फ्रॉम एंथ्रोपोलॅजी ऐंड कॉल फ़ॉर डायलॉग', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 41, अंक 39 : 4206.

[5] मैं सामाजिक कार्यकर्त्ता और ज़ेवियर इंस्टीट्यूट ऑफ़ सोशल साइंसेज़ के निदेशक एलेक्स एक्का से 2 जून, 2011 को राँची में मिली थी.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 751

जनजाति का है।[6] ग़ैर-आदिवासी समुदायों में मण्डल, बनिया, और मदीना जैसे समुदाय शामिल हैं। मण्डल समुदाय शराब बेचता है और शराब की लत के कारण आदिवासियों की काफ़ी भूमि मण्डल एवं बनिया समुदाय के चंगुल में है। इसी कारण आजकल आदिवासियों को अपनी ही ज़मीन पर मज़दूरों के रूप के कार्य करना पड़ता है। विस्थापन विरोधी एकता मंच के चंद्र कुमार मार्डी के अनुसार, ये ग़ैर-आदिवासी समुदाय भूमि को सिर्फ़ अपनी सम्पत्ति के रूप में देखते हैं। यही कारण है कि इन ग़ैर-आदिवासियों को ज़मीन से कोई लगाव नहीं है और वे आसानी से इसे बेचने के लिए रखते हैं।[7]

झारखण्ड राज्य की अधिकांश अर्थव्यवस्था की तरह पोटका की अर्थव्यवस्था मूलत: कृषि आधारित है। यहाँ के लोग ख़ुद मानते हैं कि उनका जीवन मुख्य रूप से धान की मुख्य खेती पर निर्भर है। इसके साथ ही वे कुछ क़िस्मों की सब्ज़ियाँ भी उगाते हैं। साल के आठ महीने वे धान की खेती करते हैं और बाक़ी चार महीने मशरूम, साल और दूसरे वनोपजों के माध्यम से गुज़ारा करते हैं। इसके अतिरिक्त मुर्गी-पालन भी इनके आर्थिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। दूसरी तरफ़ प्रखण्ड प्रमुख मनोज कुमार, वार्ड सदस्य दीपक कुमार जैसे कई लोग यह भी मानते हैं कि अधिकतर ज़मीन पथरीली है जो कृषि के लिए सहायक नहीं है। कई स्थानीय लोगों को यक़ीन है कि यदि सिंचाई सुविधा बेहतर हो जाए तो खेती के उत्पादन में काफ़ी बढ़ोतरी हो सकती है।[8] इस क्षेत्र की मात्र पाँच प्रतिशत जनसंख्या सरकारी नौकरी में है और केवल एक प्रतिशत लोग बड़े उद्योगों में कार्यरत हैं।

भूमि-संघर्ष का संदर्भ

इस क्षेत्र में बड़े उद्योगों द्वारा भूमि-अधिग्रहण के विरोध की पृष्ठभूमि 2004 के आस-पास से शुरू होती है। यद्यपि पोटका प्रखण्ड में सबसे पहले जिंदल कम्पनी का प्रवेश हुआ, लेकिन मैंने जिन क्षेत्रों में अपना अध्ययन किया है वहाँ मुख्य रूप से भूषण स्टील ऐंड पॉवर लिमिटेड (यहाँ के बाद से बीएसपीएल) अपनी परियोजना स्थापित करने के लिए सक्रिय रही है। इस कम्पनी के अनुसार, उसका उद्देश्य इस क्षेत्र में 10,500 करोड़ रु. की लागत से लगभग तीस लाख टन का स्टील उत्पादन और पाँच सौ मेगावाट बिजली उत्पादन क्षमता वाला संयंत्र लगाना था। अपनी योजना पूरा करने के लिए उसने झारखण्ड सरकार के साथ सात सितम्बर, 2006 को एक समझौता-पत्र (एमओयू) पर हस्ताक्षर किये। संयंत्र की स्थापना के लिए जमशेदपुर के पोटका इलाक़े में 3,450 एकड़ ज़मीन की आवश्यकता

---

[6] एक प्रखण्ड के रूप में पोटका का गठन 1958 में किया गया था. इस संदर्भ में बिहार सरकार के सामुदायिक विकास विभाग द्वारा 23 मार्च, 1958 को जारी किये गये पत्र संख्या 3852 को देखा जा सकता है. देखें, 'पोटका ब्लॉक, ईस्ट सिंहभूम' (2010) : http://jamshedpur.nic.in/potblk.htm, देखने की तारीख़ 6 जनवरी, 2012; इस शोध-पत्र में इस्तेमाल किये गये आँकड़े 2001 की जनगणना से लिए गये हैं. विशिष्ट गाँवों में विभिन्न जनजातियों और ग़ैर-जनजातियों संबंधी आँकड़े ग्रामीण लोगों से बातचीत के आधार पर तैयार किये गये हैं. यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि 2011 की जनगणना के अनुसार पूर्वी सिंहभूम ज़िले की जनसंख्या 2,291,032 है और यहाँ 1000 पुरुषों पर 949 महिलाएँ हैं और यहाँ की साक्षरता दर 77.13 है. देखें, *सेंसस ऑफ़ इण्डिया 2011* (2011), प्रोविज़नल पॉप्यूलेशंस टोटल्स, पेपर 1 ऑफ़ 2011 झारखण्ड सीरीज़ 21, डायरेक्टरेट ऑफ़ सेंसस ऑपरेशंस, राँची : 21, 40, 53.

[7] देखें, जॉय रॉज टुडु (2011), *हुड सेंगल, झारखण्डी पहचान अस्मिता एवं अस्तित्व के लिए समर्पित,* झारखण्ड इनिशिएटिव्स डेस्क : 11.

[8] लोगों के रोज़गार के बारे में फ़ील्ड-वर्क के दौरान जानकारी मिली. मैं उपरोक्त सरकारी अधिकारियों से 14 फ़रवरी 2012 को जमशेदपुर-चाईबासा रोड पर स्थित बाज़ार में मिली जिसे हाता भी कहा जाता है. जूडी गाँव जमशेदपुर से तक़रीबन 20 किलोमीटर दूर है. सरकारी अधिकारियों ने यह भी बताया कि स्थानीय ग्रामीण यह मानते हैं कि उनकी ज़मीन उत्पादन के उपयुक्त नहीं है और वे चाहते हैं कि यहाँ उद्योग स्थापित हो जाए. लेकिन ग्रामीणों से बात करने के बाद खेती के बारे में भी बिल्कुल ही अलग तस्वीर सामने आयी. लोगों ने बताया कि खेती ही उनकी जीविका का सबसे प्रमुख साधन है.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 752

क्या पुनर्वास एवं मुआवज़े द्वारा भूमि अधिग्रहण की पीड़ा दूर की जा सकती है? क़ानून में उचित मुआवज़े द्वारा भूमि अधिग्रहण का प्रावधान है और इसके मुताबिक़ राज्य भूमि विस्थापन को आर्थिक नज़रिये से देखता है। क्या इसे विस्थापन की एक पूर्ण या संतोषजनक समझ माना जा सकता है?

थी और इसके कारण पोटका के आस-पास तीस गाँवों के विस्थापन होना लाज़िमी है। ये गाँव मूलत: आदिवासियों के थे।

भूषण स्टील (बीएसपीएल) के उपाध्यक्ष विजय कुमार के अनुसार उन्होंने कॉरपोरेट सामाजिक दायित्व के तहत उन गाँवों के आस-पास तालाबों का निर्माण किया जहाँ यह संयंत्र स्थापित होने वाला था। साथ ही कम्पनी ने गाँववासियों के लिए औद्योगिक ट्रेनिंग की भी व्यवस्था की जिससे कम्पनी शुरू में तीन सौ और बाद में लगभग दस हज़ार व्यक्तियों को नौकरी दे सके।[9] कम्पनी के डिप्टी जनरल मैनेजर और प्रवक्ता चंद्रभूषण शर्मा ने इस योजना को विस्तार से समझाते हुए बताया कि यह स्टील उद्योग एक आधुनिक उद्योग होगा और प्रदूषण नियंत्रण संबंधी सभी शर्तों का पालन करेगा। उनके अनुसार प्लांट स्थापित होने से पहले ही 18 से 25 साल की उम्र के 150 ग्रामीणों का औद्योगिक प्रशिक्षण शुरू कर दिया गया। आरम्भिक दौर में ही कम्पनी ने घोषणा की कि वह 2012 तक प्रति वर्ष तीस लाख टन स्टील उत्पादन का लक्ष्य हासिल कर लेगी। उन्होंने यह दावा भी किया कि कम्पनी के लिए आवश्यक ज़मीन में से 2,792 एकड़ सरकार देगी। उनके अनुसार योजना के मुताबिक़ कम्पनी को दोमुहानी (स्वर्णरेखा एवं खरकई का मुहाना) से जल मिलेगा और वह पड़ोस के सेरायकेला-खारसवान ज़िले के गमहरिया में स्थित एनटीपीसी के रामचंद्रपुर ग्रिड से ऊर्जा लेगी। कम्पनी ने यह भी दावा किया कि उसके पास स्टील प्लांट से 25 किमी दूर स्थित पोटका के विकास की विस्तृत योजना है और वे पोटका में सड़क, पानी, बिजली जैसी आधारभूत संरचनाओं का विकास करेंगे। शर्मा ने यह भी बताया कि 'हम लोग शीघ्र ही भूमि-ख़रीद के लिए राज्य सरकार के साथ समझौता करने वाले हैं। वन या जनजातीय भूमि को लेकर किसी प्रकार का कोई मतभेद नहीं है। इसके अतिरिक्त आदिवासियों के विस्थापन का कोई प्रश्न भी नहीं है क्योंकि अधिगृहीत भूमि ख़ाली

---

[9] देखें, पिनाकी मजूमदार (2010), 'भूषण स्टील ऑफ़र्स विलेजर्स प्राइस सॉप फ़ॉर 300 एकड्स', *द टेलीग्राफ़,* कलकत्ता, 19 मई : http://www.telegraphindia.com/1100519/isp/jharkhand/story146451.jsp, देखने की तारीख़ : 10 जनवरी, 2011.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 753

है और उस पर ग्रामीण नहीं रहते हैं। पोटका के विकास के लिए हमारे पास एक ख़ाका भी है। इस क्षेत्र का विकास निश्चित है क्योंकि हमारी परियोजना अनेक लोगों को रोज़गार का अवसर प्रदान करेगी।'[10]

कम्पनी द्वारा चुने गये चौदह गाँवों के नाम थे : रोलाडीह सरमण्डा, जुडी, समरसाई, बड़ा भूमरी, रंगामटीया, पोडा भूमरी, बींगमरू, पिचली, चंद्रपुर, राजबासा, अतनावेडा, खड़ियासाई, हिसागोडा, पोटका, टांगरसाई, बड़ा सिगड़ी, छोटा सिगड़ी, हेसबेल, जहातू, कलिकापुर, मटकोमडीह, सवनडीह, खाचीबील, धिरोल, दवांकी, और सोहडा। भूषण स्टील कम्पनी 2005 से इन गाँवों में ज़मीन का अधिग्रहण करने का प्रयास कर रही थी। इसके अलावा, जमशेदपुर डिवीजन में मरचागोडा, भूरीडीह, और कुदादा का अधिग्रहण होना था।[11] स्थानीय लोगों ने यह बताया कि इन गाँवों का चुनाव इसलिए हुआ था क्योंकि वे मुख्य मार्ग पर अवस्थित थे।

उल्लेखनीय है कि पोटका प्रखण्ड के सभी हिस्सों से भूमि अधिग्रहण का समान तरीक़ों से विरोध नहीं हुआ था। 2007-08 में जुड़ी गाँव के लोगों ने सहा और स्वाती नाम के दो औद्योगिक घरानों को काफ़ी आसानी से अपनी ज़मीन दे दी क्योंकि इन कम्पनियों ने इन्हें बेहतर मुआवज़ा और रोज़गार देने का वायदा किया था। लेकिन आजकल इन गाँवों के लोग भी भूमि अधिग्रहण का विरोध कर रहे हैं क्योंकि कम्पनी ने रोज़गार देने का अपना वायदा पूरा नहीं किया है। इसके अलावा इस कम्पनी द्वारा पैदा किये जाने वाले प्रदूषण से भी काफ़ी परेशान हो गये हैं।[12]

मैं अपने अनुसंधान के वर्तमान स्तर पर इसकी सीमाओं को स्पष्ट करना आवश्यक समझती हूँ। फ़ील्ड-अध्ययन इस अर्थ में पूर्वाग्रह-युक्त है कि अधिकांश कथानक प्राथमिक रूप से भूमि अधिग्रहण के ख़िलाफ़ प्रतिरोध से ही संबंधित हैं। लेकिन यदि एक व्यापक स्तर पर देखा जाए तो अधिकांश आदिवासी अपनी ज़मीन देने के इच्छुक नहीं थे। अनेक ग़ैर-आदिवासी ग्रामीण मुआवज़े की रक़म लेकर भूमि देने को तैयार थे क्योंकि कम्पनी उन्हें नौकरी का झाँसा भी दे रही थी। लेकिन मेरा फ़ील्ड-अध्ययन मूलत: ऐसे लोगों की बातचीत के आस-पास घूमता रहा है जिन्होंने मुआवज़े के बदले अपनी ज़मीन देने से मना किया और जो मूलत: आदिवासी समुदाय के थे।

पोटका मण्डल में भूमि-अधिग्रहण का विरोध

विरोध का यह वृत्तांत रोलाडीह गाँव का है जिसमें 150 से 200 परिवार रहते हैं और जो जमशेदपुर से लगभग 20 किमी दूर है। इस गाँव में सरदारों (एक जनजाति) का प्रभाव है और इसकी 75 प्रतिशत जनसंख्या आदिवासियों की है। रोलाडीह से छह किमी दूर सिगड़ी गाँव है। इस गाँव में भी सरदार प्रभावशाली हैं और 61 परिवारों में से सिर्फ़ दो परिवार ग़ैर-आदिवासी पिछड़ा वर्ग है। सिगड़ी से आठ किमी दूर कलिकापुर गाँव है। यह एक बड़ा गाँव है जिसमें लगभग 450 परिवार रहते हैं। इस गाँव के केवल 80 परिवार आदिवासी संथाल हैं। बाक़ी परिवार बनिया एवं कुम्हार समुदाय के हैं। जमशेदपुर से ही 16 किमी की दूरी पर चाँदपुर गाँव है जहाँ 226 परिवार रहते हैं जिसमें 200 परिवार संथाल एवं भूमीज समुदाय से है। कुम्हार यहाँ के ग़ैर आदिवासी समुदाय हैं।

---

[10] 'रुपिज 10500 करोड़ फ़ॉर पोटका' (2010), *टेलीग्राफ़*, कलकत्ता, 7 मई, ईमेल पता : http://www.telegraphindia.com/ 1100507/jsp/jharkhand/story 12421650.jsp, देखेने की तारीख़ : 10 फ़रवरी, 2011.

[11] देखें जॉय राज टुडु (2010) : 4.

[12] यह सूचना आर.एन. बनर्जी द्वारा दी गयी, जो कि जूडी गाँव के सेवा-निवृत्त स्कूल शिक्षक हैं. मैं इनसे मार्च 2012 को उनके निवास पर मिली थी.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 754

इसके बाद खड़ियासाई आता है जो जमशेदपुर से 23 किमी दूर है। इस छोटे गाँव के लगभग सभी 50 परिवार भूमीज आदिवासी हैं।[13]

भूषण स्टील कम्पनी द्वारा भूमि अधिग्रहण की ख़बर मिलते ही सर्वप्रथम गाँव वालों ने गोलबंद होने का आह्वान किया। गोलबंद होना विरोध का एक तरीक़ा है जिसमें विरोधियों को एक जगह पर क़ैद कर दिया जाता है और कहीं आने-जाने पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया जाता है। इस विरोध का इतिहास 2006 से शुरू होता है जब उसी साल अक्तूबर में कम्पनी द्वारा भूमि-पूजन होने वाला था।

गाँव वालों ने निर्णय लिया कि इस उद्घाटन समारोह को शुरू में ही रोक दिया जाएगा और इसके लिए सम्पूर्ण क्षेत्र की घेराबंदी कर दी गयी। सिद्धेश्वर भगत का कहना है कि इस दौरान गाँधी की तस्वीरों का उपयोग अहिंसात्मक प्रतीक के रूप में किया गया। विरोध प्रदर्शन के दौरान आदिवासियों ने अपने पारम्परिक हथियारों और औज़ारों के साथ भी प्रदर्शन किया। यहाँ हथियारों का उपयोग एक अस्त्र के रूप में नहीं बल्कि एक प्रतीक के तौर पर किया गया। यह प्रकरण स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय आंदोलन एवं उसकी उपादेयता के साथ इस आंदोलन से जुड़ाव की तरफ़ भी इंगित करती है। सिद्धेश्वर भगत के अनुसार सरकार ने भूमि अधिग्रहण के इस विरोध को राष्ट्र-विरोधी के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया, लेकिन वास्तविकता निश्चित रूप से ऐसी नहीं थी। शाहिद अमीन के सूत्रीकरण के आईने में देखें तो यहाँ 'महात्मा का मिथक द्वैध (पॉलीसेमिक) प्रकृति' में सामने आया। औपनिवेशिक दौर में 'महात्मा' की छवि ने लोगों में पहले से मौजूद विश्वासों और उनसे जुड़ी कार्रवाई को प्रोत्साहित किया था। दूसरे शब्दों में उस समय 'महात्मा' के रूप में गाँधी एक 'भाव' के रूप में सामने आये थे, एक ऐसे भाव के रूप में जो कि सिर्फ़ भावना ही न थी बल्कि कार्य करने की प्रेरणा भी थी।[14] बहरहाल, पोटका और इसके आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों में संघर्ष कर रहे लोगों के संदर्भ में यह विडम्बना उभर कर आयी कि यद्यपि वे गाँधीवादी उपायों का सहारा ले रहे थे लेकिन उन्हें सरकार द्वारा 'राष्ट्र विरोधी' या 'माओवादी' की संज्ञा दी जा रही थी।

इस क्षेत्र में खुनकट्टी भूमि सुरक्षा संघर्ष समिति एवं रैयती भूमि सुरक्षा समिति का गठन 2006 में हुआ। भूषण कम्पनी का विरोध करने वाले सभी गाँवों के लोग इनके सदस्य थे। इन संगठनों ने 'पद यात्रा' एवं 'साइकिल यात्रा' का आयोजन किया और इसके ज़रिये लोगों में जागरूकता लाने का प्रयास किया।[15] 'जल, जंगल, और ज़मीन पर हमारा हक़ है' की व्यापक भावना एवं उद्देश्य की पृष्ठभूमि में लोगों का विरोध चलता रहा। इसके बावजूद सितम्बर, 2007 में कम्पनी के सर्वेक्षक फिर से गाँव में आये। लेकिन खेतों में काम करने वाली स्त्रियाँ इन्हें पकड़ कर ग्राम सभा के पास ले गयीं जहाँ उन्होंने एक हलफ़नामा दिया कि वे दुबारा गाँव में नहीं आएँगे। गाँव के लोग इस बात से काफ़ी नाराज थे कि कम्पनी के अधिकारी और कर्मचारी ग्राम सभा की अनुमति के बग़ैर ही गाँव में आ गये थे। कम्पनी के अधिकारी जब ग्राम सभा के सदस्यों के सामने लाए गये तो अधिकारियों को सभा के सदस्यों के पैर छूने पड़े।

---

[13] पोटका ब्लॉक में फ़ील्ड-वर्क के दौरान मैंने यह सूचनाएँ एकत्रित कीं.

[14] देखें, शाहिद अमीन (1984), 'गाँधी ऐज़ महात्मा : गोरखपुर डिस्ट्रिक्ट, ईस्टर्न यूपी, 1921-2', रणजीत गुहा (सम्पा.), *सबाल्टर्न स्टडीज़ III, राइटिंग्ज़ ऑन द साउथ एशियन हिस्ट्री ऐंड सोसायटी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली : 7-24.

[15] सिद्धेश्वर भगत ने बताया कि इसी दिन झारखण्ड में अर्जुन मुण्डा के नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी की सरकार गठित हुई थी और स्थानीय लोगों ने इसे अपने संघर्ष का समर्थन करने वाली घटना मानते हुए इसका स्वागत किया था.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 755

ग्रामवासी ख़ुद को ग्राम-सभा और पेसा के तहत मिले अधिकारों से जोड़ते हैं। इसे राज्यवादी मापदण्डों के अनुसार बतौर एक 'शरणस्थली' देखा जा सकता है। कम्पनी के अधिकारियों को दी जाने वाली सज़ाओं से स्पष्ट है कि लोगों की कल्पना राज्यवादी और ग़ैर-राज्यवादी के बीच झूलती रहती है।

लेकिन इस घटना के बाद भी कम्पनी के अधिकारियों का गाँव में आना नहीं रुका। जन-कल्याण के कारणों का बहाना बनाकर वे गाँव में भूमि-सर्वे के लिए आते रहे।[16] लेकिन गाँव के लोग अब यह बात जान गये थे कि अब सरकारी मशीनरी का उपयोग भी भूमि अधिग्रहण के लिए होने लगा है। एक बार कम्पनी अधिकारी मतदान कार्य के बहाने चक्रधरपुर मण्डल की रेलवे लाइन का सर्वेक्षण करने आये, परंतु गाँव वालों ने उन्हें आठ घंटे तक बंधक बनाए रखा। अधिकारी अपने साथ जो नक़्शे लाए थे, उन्हें गाँव के लोगों ने छीन लिया। ग्राम सभा ने उन्हें इसी वायदे के बाद छोड़ा कि वे पुनः गाँव में नहीं आएँगे। ये घटनाएँ बताती हैं कि गाँव के नगरिक क़ानूनी तरीक़ों के सहारे राज्य के हस्तक्षेप के बजाय सामुदायिक तरीक़े से समस्याओं का निवारण करना चाहते थे।

इसके बाद कम्पनी ने अपनी योजनाओं को भूमीज बहुल रोलाडीह गाँव में लागू करने का प्रयास किया। इस गाँव में भूमीज के अतिरिक्त संथाल, तंती एवं दास समुदाय के लोग भी थे। 2008 में बोनकट्टी गाँव की नदी के पास सर्वेक्षक आये जहाँ ग्रामीण एक छोटा बाँध बनाने की माँग कर रहे थे। ये सर्वेक्षक न तो ग्राम सभा की अनुमति से आये थे और न प्रशासन के अधिकारियों की अनुमति से। सिद्धेश्वर भगत के अनुसार इससे ग्रामीण काफ़ी नाराज़ हुए क्योंकि खेतों में खड़ी फ़सल के समय भाई-भाई भी ज़मीन के बँटवारे की बात नहीं करते। कम्पनी अधिकारियों को फिर से पकड़ कर ग्राम सभा के पास लाया गया। ग्राम सभा ने अपेक्षाकृत सख्त क़दम उठाया। ग्राम सभा के फ़ैसले के अनुसार दण्ड के रूप में अधिकारियों के चेहरे पर गोबर लगा कर उन्हें थाना भेज दिया गया।

यह घटनाक्रम बताता है कि ग्रामवासी ख़ुद को ग्राम-सभा और पेसा के तहत मिले अधिकारों से जोड़ते हैं। इसे राज्यवादी मापदण्डों के अनुसार बतौर एक 'शरणस्थली' देखा जा सकता है। लेख के आगे के हिस्सों में इसकी विवेचना की गयी है। कम्पनी के अधिकारियों को दी जाने वाली सज़ाओं

---

[16] लोग अब इस बात को समझ गये हैं कि उनसे इस आधार पर ज़मीन ली जाती है कि इससे सार्वजनिक उद्देश्य पूरा किया जाएगा, लेकिन बाद में इसे कम्पनियों को दे दिया जाता है. मसलन, जूडी में केले का बागान लगाने के उद्देश्य से ज़मीन ली गयी लेकिन इसे बाद में स्वाति और साहा उद्योग को दे दिया गया. इससे आस-पास के गाँवों के लोग भी सार्वजनिक उद्देश्य के नाम पर होने वाले भूमि-अधिग्रहण के ख़िलाफ़ सचेत हो गये.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 756

से स्पष्ट है कि लोगों की कल्पना राज्यवादी (स्टेटिस्ट) और ग़ैर-राज्यवादी (नॉन स्टेटिस्ट) तरीक़ों के बीच झूलती रहती है। इसी कारण एक ओर तो कम्पनी अधिकारियों को ग्राम-सभा और उसके बाद पुलिस थाने में सौंपने जैसा क़दम उठाया गया, वहीं दूसरी ओर इन अधिकारियों को ग्राम सभा में वरिष्ठ लोगों के पैर छूने या चेहरे पर गोबर लगाने जैसी सज़ा भी दी गयी।

गाँव में सर्वे करने वालों का आना और उनका पकड़ा जाना कई बार हुआ। लेकिन बाद में कम्पनी ने गाँववालों के ख़िलाफ़ मुक़दमा दायर कर दिया कि उन्होंने उनके अधिकारियों और कर्मचारियों के साथ हिंसक व्यवहार किया है। पुलिस भी इस तरह के आरोपों पर काफ़ी सक्रिय हुई और गाँव के लोगों को कई तरह से प्रताड़ित किया जाने लगा। इसके विरोध में गाँव के लोगों द्वारा अनेक सभाएँ आयोजित की गयीं और इस क्षेत्र में कई पद-यात्राएँ भी निकाली गयीं। इसके अलावा मण्डल स्तर पर तथा राज्य की राजधानी राँची में भी धरना-प्रदर्शन किया गया। बड़ी संख्या में लोगों ने भूमि रक्षा वाहिनी कृषक मोर्चा द्वारा आयोजित हुक्का जाम में भी भाग लिया ताकि कम्पनी का कोई सदस्य गाँव में न जा सके। इन सारे प्रतिरोधों के बावजूद कम्पनी ने अपनी ज़मीन की चारदीवारी बना ली, लेकिन लोगों ने 'भूमि-पूजन' रोक दिया।[17]

इसके बाद कम्पनी ने अपना ध्यान चाँदपुर एवं खड़ियासाई गाँवों की ओर किया परंतु वहाँ भी उन्हें कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। गाँव वालों ने कम्पनी के अधिकारियों को पकड़ कर उन्हें पहले की ही तरह दण्डित किया।[18] पिछली, रोलाडीह एवं हिसागोड़ा गाँवों में कड़े विरोध के बाद कम्पनी को कलिकापुर गाँव में आशा की कुछ किरणें दिखीं। यह एक बड़ा गाँव है जिसमें ग़ैर-आदिवासी मण्डल, कुम्हार एवं भगत समुदाय के लोगों की संख्या ज़्यादा है। इन लोगों ने अपनी ज़मीन कम्पनी को दे दी है और दूसरों को भी इसके लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं। इस गाँव में संथाल समुदाय के प्रधान श्याम चरण मुर्मू ने बताया कि कहीं भी कम्पनी ने अपनी परियोजना की कोई पूर्वसूचना नहीं दी थी। उन्होंने यह दावा भी किया कि जब गाँव के लोगों से ज़मीन माँगी गयी तो उन्होंने कहा कि ज़मीन उनके परिवार की जीविका का स्रोत है और उनकी पूरी ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है इसलिए वे अपनी ज़मीन नहीं दे सकते। लेकिन इसके बावजूद 2008 में कम्पनी के एजेंट बिचौलियों की मदद से ज़मीन की ख़रीद करने के लिए गाँव में आये। गाँवों के लोगों के एकजुट विरोध से बचने के लिए भारी संख्या में पुलिस भी उनके साथ थी। फिर भी छह स्त्रियों और दस पुरुषों ने उनका रास्ता रोक लिया। उन्होंने साफ़ किया कि वे कोई हिंसक कार्रवाई नहीं करना चाहते हैं बल्कि सिर्फ़ यह जानना चाहते हैं कि बिना किसी अनुमति के वे गाँव में कैसे आ गये और उनकी मंशा क्या है। गाँव के लोग इस बात से काफ़ी नाराज़ थे कि कम्पनी ज़मीन के मालिकों से सीधे ज़मीन लेने के बजाय बिचौलियों के माध्यम से ज़मीन प्राप्त करने का प्रयास कर रही थी।[19]

---

[17] हुक्का जाम का शाब्दिक अर्थ है ताला बंद करना, जिससे कोई भी अंदर न आ सके. इस संदर्भ में स्थानीय कार्यकर्त्ता सोमबारी मूर्मू में बहुत सी उपयोगी बातें बताईं. ये भूमि रक्षा बाहिनी किसान मोर्चा से जुड़ी हुई हैं. साथ ही ये स्त्रियों की मदद करने वाली संस्था प्रदान से भी जुड़ी हुई हैं. इसके अलावा, इस संदर्भ में मुझे सखन माँझी, कमो मूर्मू, टोडो टुडु, तूनिया सरदार, सरस्वती सरदार आदि से भी कई महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलीं. मैं इनके साथ 2 मार्च, 2012 से 5 मार्च, 2012 के बीच मिली थी.

[18] इस स्थान के बारे में अधिकांश सूचना सर्वेश्वर सिंह और हरीश सिंह द्वारा उपलब्ध करायी गयीं जो खुनकट्टी भूमि सुरक्षा संघर्ष समिति से जुड़े हुए हैं.

[19] यहाँ मैं संथाल समुदाय के प्रधान श्याम चरण मूर्मू, उनकी पत्नी और एक एक्टिविस्ट तापस भगत से मिली. इसके अलावा, हीरामनी मूर्मू, बुट्टी सोरेन, शंकुतला मुर्मु से भी मैंने विस्तार से बात की. ये सभी भूमि सुरक्षा संगठन समिति से जुड़े हुए हैं. इसके अलावा, कलिकापुर पंचायत के मुखिया ने भी कुछ सूचनाएँ उपलब्ध करवाईं.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 757

स्थानीय नागरिकों (विशेषकर आदिवासियों) ने अपने विरोध को मज़बूती से सामने रखा। उनके विरोध में यह नारा प्रमुखता से सामने आया कि 'जल, जंगल, ज़मीन की लूट, नहीं किसी को इनकी छूट।' विरोध प्रदर्शनों से जुड़ी कार्यकर्ता शकुंतला मुर्मू ने क्रोधित होकर कहा कि 'बिचौलिये कभी भी ज़मीन का मूल्य नहीं समझ सकते क्योंकि उन्होंने इस ज़मीन पर कभी काम नहीं किया है, उनका इस ज़मीन से कोई जुड़ाव नहीं है।' गाँव के लोगों की दलालों के साथ कई बार झड़प भी हुई। उल्लेखनीय है कि अधिकतर आदिवासियों के साथ-ही-साथ कुछ ग़ैर-आदिवासियों ने भी अपनी ज़मीन देने से इनकार कर दिया। जब भी भूषण स्टील के अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक इस क्षेत्र में आते थे, उन्हें पुलिस द्वारा ज़बरदस्त सुरक्षा उपलब्ध कराई जाती थी। गाँव के कुछ लोग, जिनमें से अधिकांश ग़ैर-आदिवासी थे, अपनी ज़मीन देने के लिए तैयार हुए। ऐसे लोगों को कम्पनी ने अग्रिम राशि के तौर पर 2000 रु. दिये।[20]

ग्रामीणों का विरोध प्रदर्शन... क्या इसे हम राज्य के ख़िलाफ़ 'सम्पूर्ण और प्रत्यक्ष' चुनौती की संज्ञा दे सकते हैं? या इसे समाज में 'वर्चस्व द्वारा आम-सहमति' क़ायम रखने वाली राज्य की नागरिक संस्थाओं के रूप में मौजूद 'गहन व्यवस्थाओं' को कमज़ोर करने की क्रमिक और विध्वंसकारी रणनीति के तौर पर देखा जा सकता है?

इसके बावजूद भूमि सुरक्षा संघर्ष समिति के नेतृत्व में ग्रामीणों का विरोध चलता रहा। इस अहिंसक संघर्ष का नारा था, 'हमला चाहे जैसा होगा, हाथ हमारा नहीं उठेगा।' फिर भी ग्रामीणों के विरुद्ध कम्पनी ने मुक़दमा किया जिसमें यह आरोप लगाया कि उन्होंने कम्पनी के मुख्य प्रबंध निदेशक की गाड़ी पर हमला किया। लेकिन ग्रामीणों ने दावा किया कि यह काम कम्पनी के दलालों का था और इसके माध्यम से वे ग्रामीणों को दोषी ठहराना चाहते थे।

इस पृष्ठभूमि में 2008 के सितम्बर में झारखण्ड चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स ने राँची भूषण स्टील कम्पनी के समर्थन में 'झारखण्ड बचाओ' रैली की। इस रैली में बल दिया गया कि गाँवों में कम्पनी के सर्वेक्षकों के साथ किया बरताव पूरी तरह से ग़लत था। रैली में माँग की गयी कि दोषी ग्रामीणों को सज़ा दी जाए और उद्योगपतियों की समुचित सुरक्षा की व्यवस्था हो। साथ ही ग्रामीण लोगों की नाराज़गी को दूर करने की कोशिश के तहत एक ग्रामीण विकास कमेटी भी बनाई गयी जिस पर पाँच लाख रुपये खर्च किये गये। इस रैली के माध्यम से उद्योगपति सरकार पर दबाव बनाने में सफल हुए और गाँव वालों के विरुद्ध मामला दर्ज कर लिया गया। इन घटनाओं की प्रतिक्रिया के रूप में सितम्बर रैली के कुछ समय बाद ही ग्रामीणों ने भी स्थानीय स्तर पर एक जन-आक्रोश रैली आयोजित की जिसमें कम्पनी की कार्रवाई का विरोध कर रहे लोगों ने भारी संख्या में भाग लिया। इसमें माँग की गयी कि ग्रामीणों पर थोपे गये सभी मामले वापस लिए जाएँ। रैली में शामिल लोगों ने यह घोषणा भी की कि वे अपनी एक इंच ज़मीन भी भूषण स्टील कम्पनी को नहीं देंगे। कुछ दिनों बाद स्थानीय स्तर पर सक्रिय कई संगठनों ने घाटीदूबा में एक बड़ी सामूहिक रैली की। इसमें सरकार द्वारा बल प्रयोग की निंदा करते हुए कम्पनी को ज़मीन न देने की घोषणा की गयी।[21]

---

[20] बुट्टी सोरेन ने यह बताया कि कलिकापुर में एक ही परिवार के चार लोगों ने एक ही ज़मीन के कागज़ की चार फ़ोटोकॉपी करके इसे भूषण कम्पनी को दे दिया. लेकिन हक़ीक़त में वहाँ काफ़ी कम ज़मीन थी. लेकिन बिचौलिये का काम करने वाले शंकर दत्त ने इस प्रक्रिया में काफ़ी पैसे बनाए.

[21] जॉय राज टुडु (2010) : 7-8.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 758

2009 तक उपरोक्त गाँवों के अधिकांश आदिवासियों ने एकजुट होकर यह फ़ैसला किया कि वे किसी भी क़ीमत पर अपनी ज़मीन नहीं देंगे। 2009 में कम्पनी ने ज़मीन लेने के लिए कोई सक्रिय प्रयास नहीं किया, लेकिन इसी वर्ष शिबू सोरेन की सरकार बनने के बाद कम्पनी ने अपनी परियोजना आगे बढ़ाने की सक्रिय कोशिश शुरू कर दी। इसी कारण कम्पनी के दबाव के चलते मार्च, 2010 में पुलिस ने विस्थापन विरोधी एकता मंच के नेता कुमार चंद्रा मार्डी को गिरफ़्तार कर लिया। इसके बाद इस इलाक़े के लोगों ने सामूहिक रूप से जमशेदपुर में विरोध प्रदर्शन किया। वहाँ प्रदर्शनकारियों ने अन्य बातों के अलावा इस बात को दुहराया कि स्थानीय लोगों का उनके जल, जंगल ज़मीन पर अधिकार है जिसे सरकार या कम्पनी के लोग नहीं छीन सकते हैं। इसी तरह 13 अप्रैल, 2010 को भी धरने का आयोजन हुआ, जिसमें स्थानीय समुदायों के संवैधानिक अधिकारिकों की सुरक्षा करने की माँग की गयी। [22]

इन सभी गतिविधियों के कारण लोगों का जनाक्रोश काफ़ी बढ़ गया और आख़िरकार मई, 2010 में जनता-कर्फ़्यू लागू हुआ। मई, 2010 कम्पनी ने भूमि पूजन समारोह का आयोजन किया था जिसका विरोध करने के लिए कई सभाएँ आयोजित की गयीं। इन सभाओं का केंद्र रोलाडीह गाँव था जहाँ तक़रीबन दो सौ ग्रामीण जमा हुए और उन्होंने 15 मई, 2010 से जनता-कर्फ़्यू लागू करने का फ़ैसला किया। लोगों ने फ़ैसला किया कि पोटका और इसके आस-पास के रोलाडीह, पिछली, बड़ा सिगड़ी, खड़ियासाई और सरमण्डा जैसे गाँवों को जोड़ने वाली सभी सड़कों पर बैरीकेड लगा दिया जाएगा, ताकि 16 मई, 2010 कम्पनी के अधिकारी और सरकारी अधिकारी इस परियोजना का भूमि-पूजन और शिलान्यास करने इस क्षेत्र में न आ सकें।

हर उम्र, जेण्डर और समुदाय के लोगों ने अपने पारम्परिक हथियारों के साथ विरोध प्रदर्शनों में भाग लिया। इन हथियारों को ये लोग औज़ार कहते हैं और इनमें तीर, धनुष, हँसुआ और कुल्हाड़ी आदि शामिल थे। दालभूम के परगना अधिकारी कार्तिक कुमार प्रभात, स्थानीय विधायक मनेका सरदार और अन्य स्थानीय राजनीतिज्ञों को लोगों ने तक़रीबन दो घंटे तक बंधक बनाकर रखा। कॉरपोरेट-समर्थन कर रही पुलिस को भी लोगों के गुस्से का सामना करना पड़ा। इन घटनाओं के कारण ही भूषण कम्पनी के मुख्य प्रबंध निदेशक संजय सिंघल कार्यक्रम में भाग लिए बग़ैर ही वापस चले गये। कम्पनी का भूमि पूजन पूर्वनियोक्ति स्थान पर नहीं हुआ बल्कि गाँव के लोगों से छुपा कर पोटका के पास के बालिका विद्यालय के पास हुआ। लोगों के विरोध को शांत करने के मक़सद से एक तरफ़ जहाँ स्थानीय परगना अधिकारी ने गाँव वालों को बिना उनकी अनुमति ज़मीन न लेने का वचन दिया, वहीं दूसरी तरफ़ 600 ग्रामीणों को धारा 144 के उल्लघंन के लिए दोषी क़रार दिया गया। इसके बावजूद लोगों का विरोध लगातार चलता रहा। परिणाम यह हुआ कि कम्पनी पोटका ब्लॉक में अपना कोई कार्य शुरू करने में नाकाम रही।

इन सभी विरोधों के जो तरीक़े या साधन रहे हैं वे क्या इंगित करते हैं? ग्रामीणों का विरोध प्रदर्शन किसे चुनौती दे रहा है? क्या इसे हम बल-प्रयोग करने वाले राज्य की एजेंसियों के ख़िलाफ़ 'सम्पूर्ण और प्रत्यक्ष' चुनौती की संज्ञा दे सकते हैं? या इसे समाज में 'वर्चस्व द्वारा आम-सहमति' क़ायम रखने वाली राज्य की नागरिक संस्थाओं के रूप में मौजूद 'गहन व्यवस्थाओं' को कमज़ोर करने की क्रमिक और विध्वंसकारी रणनीति के तौर पर देखा जा सकता है? दूसरे शब्दों में प्रश्न यह है कि पोटका प्रखण्ड के ग्रामीणों द्वारा अपनाई गयी रणनीतियों को 'वार ऑफ़ मैनूवर' (चलायमान युद्ध) या 'वार ऑफ़ पोज़ीशन' (मोर्चाबंदी वाला युद्ध) के रूप में देखा जा सकता है?

---

[22] इस गाँव के लोग भी भूमि सुरक्षा संगठन समिति से जुड़े हुए हैं और जिंदल कम्पनी द्वारा भूमि-अधिग्रहण का विरोध कर रहे थे.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 759

हम गोलबंद, जनता-कर्फ़्यू, पद-यात्रा, साइकिल रैली, धरना या घेराव जैसे विरोध के तरीक़ों को राज्य एवं बड़े उद्योगों के प्रतिनिधियों या शोषणकर्ताओं के ख़िलाफ़ प्रत्यक्ष आक्रमण के रूप में देख सकते हैं। ऐसी स्थिति को हम 'वार ऑफ़ मैनूवर' की संज्ञा दे सकते हैं। लेकिन हम विरोध के इन स्वरूपों में अंतर्निहित एक गहरा अर्थ भी देख सकते हैं। हम ग्राम्शीवादी अर्थ में कह सकते हैं कि यहाँ 'वार ऑफ़ पोज़ीशन' लगातार सक्रिय है। ग्राम्शी की व्याख्या के अनुसार 'वार ऑफ़ मैनूवर' उस समय तक क़ायम रहता है जिस समय तक उन मुक़ामों को जीतने पर ध्यान दिया जाता है जो निर्णायक नहीं हैं। दरअसल, ग्राम्शी मानते हैं कि इन दोनों रणनीतियों में से किसी एक का चुनाव समाज की 'संस्थात्मक जटिलता' से तय होता है। अर्थात् ऐसे समाजों में इन दो रणनीतियों में से किसी एक की आवश्यकता होती है जहाँ राज्य 'बाहरी परिधि' (आउटर पेरीमीटर) के रूप में काम करता है। यह राज्य समाज की नागरिक संरचनाओं पर आधारित होता है जो शासक वर्गों के वर्चस्व का निर्माण करती हैं (ग्राम्शी मानते हैं कि बूर्ज्वा वर्ग ही शासक वर्ग होता है)। ऐसी स्थिति में 'वार ऑफ़ पोज़िशन' की आवश्यकता होती है जिससे एक 'काउंटर हेजिमनी' या प्रति-वर्चस्व का निर्माण किया जा सकता है (ग्राम्शी मानते हैं कि सर्वहारा वर्ग यह काम कर सकता है)।

पोटका के आंदोलन से यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि उद्योगों के बारे में 'विकास' की समझ एक हेजिमनी है। यह समझ राज्य की गतिविधियों के एक प्रमुख आधार का काम करती है। लोगों के प्रतिरोध द्वारा इसे चुनौती दी जा रही है।[23] यदि हम व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार करें तो यह बात सामने आती है कि यहाँ के लोगों का आंदोलन 'वार ऑफ़ पोज़िशन' के रूप में है। ये लोग विमर्श बदलने का प्रयास कर रहे हैं। अधिकांश मौक़ों पर वे प्रभुत्वशाली शब्दावली की जगह एक नये तरह की शब्दावली प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं। लेकिन इसके साथ ही वे 'वार ऑफ़ मैनूवर' में भी शामिल हैं क्योंकि वे राज्य और कॉरपोरेट अधिकारियों के साथ सीधा टकराव कर रहे हैं।

अभी तक हमने समय और स्थान के संदर्भ में आंदोलन में क्षेत्र और दायरे को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इस समझ के आधार पर इस शोध-पत्र के केंद्रीय मुद्दे को स्पष्ट करने में मदद मिल सकती है कि आख़िर भूमि संगठन और जुड़ाव के एक महत्त्वपूर्ण आधार के रूप में किस तरह काम करती है।

आख्यानों द्वारा पहचान के आधार के रूप में ज़मीन की भूमिका की समझ

दिलचस्पी की बात यह है कि आदिवासियों ने यह प्रश्न उठाया कि यदि कम्पनी मुआवज़ा के साथ-साथ नौकरी भी दे रही है तो वे अपनी ज़मीन दे कर 'बेहतर ज़िंदगी क्यों न जिएँ?' उन्होंने ख़ुद ही इस प्रश्न का जवाब देते हुए कहा कि 'भूमि सब कुछ है, भूमि के बिना शिक्षा या किसी अन्य सुविधा का कोई अर्थ नहीं है।' मसलन, रोलाडीह गाँव के सोमबारी मुर्मू के परिवार वालों का कहना था कि भूमि एकमात्र सम्पत्ति है और अ-शिक्षा के कारण कृषि कमाई का एकमात्र साधन है। क्या इसका यह अर्थ है कि यदि उन्हें शिक्षित कर दिया जाए तो वे भूमि छोड़ कर दूसरे व्यवसायों की तरफ़ चले जाएँगे? इसका प्रभावी उत्तर है 'नहीं'। सोमबारी के परिवार के सदस्यों ने सामूहिक रूप से कहा कि 'भूमि का संबंध हमारे अस्तित्व से है।' उनके अनुसार, उनके पूर्वजों ने उसी ज़मीन से अपना जीवनयापन किया और उनका अपना जीवनयापन भी उसी से हो रहा है। गेहूँ का उत्पादन इतना हो

---

[23] देखें, एंटोनियो ग्राम्शी (1971), *सेलेक्शंस फ्रॉम द प्रिज़न नोटबुक्स,* अनुवाद : क्विंटिन होअरे और ज्यॉफ़्री नॉवेल स्मिथ, इंटरनैशनल पब्लिशर्स, न्यूयॉर्क : 238-239.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 760

भू-क्षेत्र उनके अस्तित्व से जुड़ा भौगोलिक स्थान बन जाता है... समुदाय की बुनियाद उस ज़मीन में निहित होती है, जिसमें समुदाय के सभी सदस्य भागीदारी करते हैं, यह एक ऐसा स्थान होता है जो उनके सामाजिक विश्व का आधार-स्तम्भ बन जाता है... यह उन्हें एक ठोस वर्तमान और आशान्वित भविष्य से जोड़ता है तथा उन्हें समय और स्थान में निरंतरता का आश्वासन देता है।

जाता है जिससे वे खा भी पाते हैं और बेच भी लेते हैं। अपने जीवनयापन के लिए वे कुछ सब्ज़ियों का उत्पादन भी कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त नदियाँ एवं तालाब उनके पशुओं के लिए पर्याप्त हैं।[24] सुजाना बी.सी. देवालय के शब्दों में :

> भूमि केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं था जहाँ लोग रहते थे और काम करते थे। दरअसल यह एकमात्र सम्भव स्थान था जहाँ लोग रह सकते थे... उन्होंने स्वयं को और अपने जीवन को भूमि के संबंध में परिभाषित किया जो उनके लिए जीविका का आधार थी; साथ ही उन्होंने भूमि को एक ऐसे पवित्र स्थान के तौर पर भी देखा, जिस पर उनका इतिहास दर्ज था। भू-क्षेत्र उनके अस्तित्व से जुड़ा भौगोलिक स्थान बन जाता है... समुदाय की बुनियाद उस ज़मीन में निहित होती है, जिसमें समुदाय के सभी सदस्य भागीदारी करते हैं, यह एक ऐसा स्थान होता है जो उनके सामाजिक विश्व का आधार-स्तम्भ बन जाता है... यह लोगों को मज़बूती से इतिहास में स्थापित उनकी उत्पत्ति से जोड़ता है ('काल्पनिक' या 'वास्तविक')। यह उन्हें एक ठोस वर्तमान और आशान्वित भविष्य से जोड़ता है तथा उन्हें समय और स्थान में निरंतरता का आश्वासन देता है।'[25]

---

[24] सिगडी गाँव के सिद्धेश्वर सरदार का मानना है कि कम्पनी सुवर्णरेखा नदी पर अपना नियंत्रण क़ायम करना चाहती है जो कि आस-पास सैकड़ों गाँवों के लिए पानी का मुख्य स्रोत है. यह नदी आदिवासियों के दिखना दोह उत्सव (जिसे टुसु मेला भी कहा जाता है) का मुख्य आधार है. यह उत्सव हर साल 14 जनवरी को मनाया जाता है. इसमें लोग पारम्परिक रूप से नदी में मछली का शिकार करते हैं. बहरहाल, यह भी कहा जा सकता है कि लोग रणनीतिक रूप से यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि वे काफ़ी हद तक आत्मनिर्भर हैं ताकि उनकी साधनहीनता उन पर 'विकास' थोपने का बहाना न बने. भले ही सभी लोग समृद्ध न हों, लेकिन भूमि और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की मदद से वे अपना ठीक-ठाक गुज़ार कर लेते हैं.

[25] देखें, सुज़ैना बी.सी. डिवाले (1992), *डिस्कोर्सेज़ ऑफ़ एथ्निसिटी, कल्चर ऐंड प्रोटेस्ट इन झारखण्ड,* सेज, नयी दिल्ली : 134.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 761

उपरोक्त विचार एक प्रकार की औपनिवेशिक अवधारणा की तरह लग सकता है जो क़बीलाई समाज को खाने और मौज़-मस्ती में विश्वास करने वाले एवं पैसे एवं बाज़ार के बारे में कुछ न समझने वाला समुदाय मानती है। लेकिन यह सही नहीं है क्योंकि इस क्षेत्र के लोग इस बारे में तेज़ी से जागरूक हुए हैं। उन्हें एहसास हो गया है कि भूमि निवेश के लिए एक मूल्यवान सम्पत्ति है। रोलाडीह गाँव के समीर सरदार के अनुसार विभिन्न योजनाओं एवं कार्यों के लिए भूमि की माँग और क़ीमत बढ़ती जा रही है और सरकार ने भी क़ीमतें बढ़ाई है। अनेक लोग भूमि-बाज़ार की गतिशीलता समझते हैं। इसलिए भूमि से जुड़ी अस्मिता और संस्कृति को इसकी भौतिकता से जोड़ कर समझने की ज़रूरत है। लेकिन समीर सरदार ने भी अपना वक्तव्य यह कहते हुए पूरा किया कि 'बढ़ी हुई क़ीमतों का अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी ज़मीन बेच देंगे।'[26]

कम्पनी के प्रति लोगों के अविश्वास और सरकार द्वारा कम्पनी के समर्थन के कारण भी वे ज़मीन पर अपना अधिकार क़ायम रखना चाहते हैं। इसलिए यह प्रश्न भी सामने आता है कि यदि कम्पनी अपने वायदे पूरा करे और लोगों को रोज़गार प्रदान करे तो गाँव वाले क्या करेंगे? तब क्या वे कम्पनी को अपनी ज़मीन देंगे? यहाँ कामो मुर्मू स्पष्ट करते हैं कि कम्पनी ज़्यादा से ज़्यादा दस लाख रुपये और परिवार के एक सदस्य को अधिकतम दस साल के लिए नौकरी देने का वायदा करती है। उसके बाद क्या होगा? परिवार के बाक़ी सदस्यों का क्या होगा?[27] तुनिया सरदार के अनुसार, 'अब तो ज़मीन पर लोग संयुक्त रूप से खेती करते हैं और इसकी उपज सबके लिए होती है। खेतों में बच्चे और बूढ़े भी काम करते हैं।' उन्होंने यह तर्क भी दिया कि 'बीमार होने पर कम्पनी काम से निकाल देगी उसके बाद हम कहाँ जाएँगे?' इसलिए गाँव के लोग सामूहिक रूप से यह मानते थे कि ज़मीन उनकी जीविका की बुनियाद है। यदि उनके पास ज़मीन नहीं होगी तो उनके जीवन का आधार उनसे छिन जाएगा, इसलिए अपना जीवन ख़तरे में पड़ने पर भी वे अपनी ज़मीन सरकार या उद्योग समूह को नहीं देंगे।

अधिकतर स्थानीय लोग इसलिए भी मुआवज़े के ख़िलाफ़ हैं क्योंकि वे मानते हैं कि कॉरपोरेट या राज्य उन्हें इतना स्थान नहीं देगा कि वे अपने पशुओं आदि को अपने साथ रख सकें। ये लोग गाँव के पेड़, पौधे, नदियाँ, पहाड़, पूजा स्थान, श्मशान स्थल आदि को लेकर भी चिंतित हैं। उन्हें यह डर भी सताता है कि स्थानीय जगहों से जुड़ी उनकी यादें और उनके पुरखों की निशानियाँ ख़त्म हो जाएँगी। कुछ समुदाय अपने पूर्वजों को अपना संरक्षक मानते हैं और अनेक उत्सवों पर उनकी पूजा भी करते हैं। इसलिए आदिवासियों की चिंता यह है कि इन उद्योगों के स्थापित होने के साथ उनका अस्तित्व ख़त्म हो जाएगा। उनकी सामुदायिक पहचान भी ख़त्म हो जाएगी। वे यह मानते हैं कि राज्य या बड़ी कम्पनियाँ उनकी परम्पराओं एवं रीति-रिवाज़ों के लिए मुआवजा नहीं दे सकतीं? स्थानीय कार्यकर्त्ता सरस्वती सरदार के शब्दों में, 'हम लोग भूमि के बिना रिफ़्यूज़ी की तरह हो जाएँगे।' इसी तरह इस संदर्भ में एक जेसुइट पुजारी स्टेन स्वामी का विचार भी उल्लेखनीय है। स्वामी 'बगयीचा' संस्था के अध्यक्ष हैं जो झारखण्ड के आदिवासियों के लिए एक ट्रेनिंग एवं अध्ययन संस्था चलाता है। उनके अनुसार, 'विस्थापन हर किसी के लिए कष्टकर होता है। ऐसे स्थान को त्यागना अत्यंत ही

---

[26] मैं सोमबारी मूर्मू और उनके भाई सखान माझी से 13 मई, 2012 को मिली. ये दोनों भूमि रक्षा वाहिनी किसान मोर्चा से जुड़े हुए हैं. इसके बाद मैं रोलाडीह गाँव में 15 फ़रवरी, 2012 को समीर सरदार से मिली.

[27] स्त्रियों से बातचीत करने के बाद यह बात स्पष्ट रूप से सामने आयी कि चूँकि स्त्रियाँ भी खेत में काम करती हैं इसलिए उनका भी भूमि से जुड़ाव है. उन्हें यह भी पता है कि एक ज़मीन के हाथ से निकल जाने उन पर दोहरी मार पड़ेगी. एक तो परिवार के लिए जीविका का साधन खत्म हो जाएगा, और दूसरा, यदि कम्पनी नौकरी देगी तो वह भी मुख्य रूप से पुरुषों को ही वरीयता देगी.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 762

भूमि निवेश के लिए एक मूल्यवान सम्पत्ति है।... विभिन्न योजनाओं एवं कार्यों के लिए भूमि की माँग और क़ीमत बढ़ती जा रही है और सरकार ने भी क़ीमतें बढ़ाई है। अनेक लोग भूमि-बाज़ार की गतिशीलता समझते हैं। इसलिए भूमि से जुड़ी अस्मिता और संस्कृति को इसकी भौतिकता से जोड़ कर समझने की ज़रूरत है।... 'बढ़ी हुई क़ीमतों का अर्थ यह नहीं है कि हम अपनी ज़मीन बेच देंगे।'

कष्टकर होता है, जहाँ किसी व्यक्ति का जन्म एवं पालन-पोषण हुआ है, या जिस घर को उसने स्वयं अपने ख़ून-पसीने से बनाया है। विशेष रूप से यह उस समय ज़्यादा कष्टकर हो जाता है जब विस्थापित व्यक्ति के लिए वैकल्पिक आवास की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। आदिवासियों के लिए यह ख़ास तौर पर त्रासद होता होता क्योंकि उनके लिए भूमि न सिर्फ़ एक आर्थिक वस्तु है बल्कि आध्यात्मिक अनुभव है। इनके लिए विस्थापन अत्यंत ही यातनादायक अनुभव होता है।'[28] एक अन्य कार्यकर्त्ता नीति माई ने यह कहा कि 'केवल तभी वास्तविक विकास होता है, जब लोग अपने अधिकारों का वास्तविक उपयोग कर सकते हैं। हमें किसी दूसरे के फ़ायदे के लिए अपने अधिकारों को नहीं छोड़ना चाहिए। यदि हमारे देसौली, हमारे त्यौहार और हमारे पवित्र स्थान ही डूब जाएँगे, तो फिर अधिकार होने का क्या मतलब है? हम इनके बग़ैर नहीं रहेंगे; हम विकास चाहते हैं, विनाश नहीं।' नीति माई के ये शब्द स्पष्ट करते हैं कि इस क्षेत्र के लोग विकास तो चाहते हैं, लेकिन वे इस बात के लिए तैयार नहीं हैं कि यह उनकी अस्मिता को पूरी तरह नष्ट कर दे। वे किसी भी हालत में अपने अपना सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश सरकार को सौंपने के लिए तैयार नहीं हैं।[29]

रोलाडीह गाँव में सामूहिक चर्चा के दौरान उपस्थित लोगों ने ज़ोरदार तरीक़े से यह बात सामने रखी कि वे जैसे हैं, वैसे खुश हैं। वे ज़हरीले धुएँ की मार नहीं झेलना चाहते। उनका कहना था कि यदि वे अपनी बंजर ज़मीन भी देते हैं तो उस पर लगने वाले उद्योगों से जो धुआँ और अन्य प्रदूषण पैदा होगा वह उपजाऊ ज़मीन में होने वाले धान की फ़सल को ख़त्म कर देगा। साथ ही उन्होंने कहा कि हम सरकार से किसी चीज़ की भीख नहीं माँग रहे हैं। सरस्वती सरदार की इस बात से वहाँ मौजूद लोगों ने सहमति जताई कि भूमि से उनकी ज़िंदगी जुड़ी हुई है और इस विषय पर वे सरकार द्वारा बनाए किसी भी क़ानून से सहमति नहीं रखते हैं। लोगों ने बार-बार यह नारा भी लगाया कि वे अपनी जान दे देंगे लेकिन ज़मीन नहीं। सिद्धेश्वर भगत ने इसे एक नया स्वरूप प्रदान किया। उनके अनुसार 'चूँकि सरकार हमें जन्म नहीं देती है इसलिए वह हमारी जान भी नहीं ले सकती। इसलिए न हम अपनी जान देंगे, और न ज़मीन।'[30]

---

[28] देखें, मार्टिना क्लॉस और सेबेस्टियन हार्टिंग (2012), *द कोयल कारो हाइडेल प्रोजेक्ट : ऐन इमिरिकल स्टडी ऑफ़ द रेज़िस्टेंस मूवमेंट ऑफ़ द आदिवासी इन झारखण्ड/इण्डिया* : http://www.adivasi-koordination.de/ dokumente/ Diplomarbeit KoelKoro summary.pdf, देखने की तारीख़ : 4 दिसम्बर, 2012.

[29] स्थानीय एक्टिविस्ट नीति माई ने सुवर्णरेखा बाँध परियोजना का विरोध करते हुए ये विचार व्यक्त किये. देखें, नीति माई (2007), *दिस इज़ आवर होमलैण्ड, अ कलेक्शन ऑफ़ ऐसेज ऑन द बिट्रेयल ऑफ़ आदिवासी राइट्स इन इण्डिया,* इक्वेशंस, बंगलुरु : 119.

[30] आम तौर पर आंदोलन से जुड़े अन्य लोगों ने भी अलग-अलग शब्दों में यह ही भावनाएँ अभिव्यक्त कीं.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 763

इसके अतिरिक्त लोग अपनी भूमि इसलिए भी नहीं देना चाहते क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की सरकारों ने लोगों के साथ विश्वासघात किया है। लोगों को ऐसा लगता है कि सरकार ने उनके त्याग को पूरी तरह नज़रअंदाज़ किया है। झारखण्ड इंडिजेनस पीपुल्स फ़ोरम के सदस्य गैडस्न डुंगडुंग के अनुसार :

> स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद झारखण्ड में ऊर्जा संयंत्र, सिंचाई योजनाओं, खनन कम्पनियों का स्टील उपयोग और अन्य विकास की योजनाओं के लिए 24,15, 698 एकड़ भूमि का अधिग्रहण हुआ और इससे लगभग 17,10,787 व्यक्तियों का विस्थापन हुआ। हर एक परियोजना में लगभग 80 से 90 प्रतिशत आदिवासियों और अन्य स्थानीय लोगों को विस्थापित किया गया। इसमें केवल 25 प्रतिशत लोग आंशिक रूप से पुनर्वासित हुए और बाक़ी लोगों का क्या हुआ कोई नहीं जानता। अब तक आदिवासी पूरी तरह समझ गये हैं कि विकास मूलतः ज़मींदारों, ठेकेदारों, नौकरशाही, राजनीतिज्ञों और अन्य बाहरी लोगों के लिए हैं।[31]

दरअसल, स्थानीय आदिवासियों को पक्का भरोसा है कि ज़मीन उन्हें एक पूर्ण अस्तित्व और सुरक्षा प्रदान करती है। विस्थापन को बढ़ावा देने वाले विकास ने भी लोगों की इस भावना को मज़बूत बनाया है।

उल्लेखनीय है कि स्थानीय आदिवासी लोगों के जीवन में उत्सव और देवताओं की पूजा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके प्रमुख देवता 'मरांग बुरू' हैं। इनकी पूजा भी कृषि चक्र और इस तरह भूमि से जुड़ी हुई है। कलिकापुर गाँव की हीरामनी मुर्मू, बुद्धी सीरेन, शकुंतला मुर्मू जैसी सक्रिय कार्यकर्ताओं ने बताया कि वे लोग बड़े उत्साह से अपने त्यौहार मनाते हैं। मार्च में बसंत के आगमन पर वहाँ त्यौहार मनाया जाता है जिसमें आने वाले समय में अच्छे मानसून के लिए प्रार्थना की जाती है। जून-जुलाई में पहली बरसात होने के बाद वे लोग इरोक नाम का त्यौहार मनाते हैं जो खेती और फ़सल-चक्र की शुरुआत से संबंधित है। इसके बाद नवम्बर में जानथर नामक त्यौहार बनाया जाता है जो फ़सल की कटाई से संबंधित है। इसके कुछ समय बाद वे सोहराई नामक त्यौहार भी मनाते हैं जिसमें देवताओं को उनकी दया-दृष्टि के लिए धन्यवाद दिया जाता है।[32] इस तरह विभिन्न अवसरों पर होने वाले उत्सव सभी आदिवासियों को सामूहिकता के भाव से जोड़ते हैं। इन त्यौहारों में भूमि इस समुदाय की सामूहिक अस्मिता की अभिव्यक्ति बन जाती है।

इस संदर्भ में नित्या राव एक अन्य रोचक पक्ष पेश करती हैं। उनके अनुसार इस क्षेत्र में भूमि वैवाहिक संबंधों के लिए एक प्रमुख कसौटी का काम करती है। अपने अध्ययन में उन्होंने दिखाया है कि स्थानीय लोग यह मानते हैं कि ज़मीन किसी घर की प्रकृति का परिचय देती है और इससे यह भी अंदाज़ा हो जाता है कि शादी के बाद घर में लड़की को किस तरह का काम करना होगा।[33]

निष्कर्ष

इन आख्यानों के आधार पर क्या यह कहा जा सकता है कि उनमें आर्थिक निर्धारणवाद में निहित राजनीतिक पारिस्थितिकी की समीक्षा निहित है ? आर्थिक निर्धारणवाद प्राकृतिक संसाधनों का महत्त्व उनके भौतिक मूल्य में निहित मानता है। यदि हम सांस्कृतिक राजनीति के पहलू से सोचें तो कुछ हद

---

[31] देखें, ग्लैडसन डुंगडुंग (2010क), 'आदिवासीज़ स्ट्रगल अगेंस्ट डिसप्लेसमेंट इन झारखण्ड', तेमियो तेमिनेन (सम्पा.), *आदिवासीज़ ऐट द क्रॉसरोड्स इन इण्डिया,* ईमेल पता : देखने की तारीख़ : 21 मई 2012 : 59-60.

[32] नित्या राव (2008), 'गुड वुमेन डू नॉट इनहेरिट लैण्ड', *पॉलिटिक्स ऑफ़ लैण्ड जेण्डर इण्डिया,* ऑरिएंट ब्लैकस्वान, नयी दिल्ली : 198; विक्टर दास ने अपने अध्ययन में यह दिखाया है कि इस क्षेत्र में सभी प्रमुख त्यौहार प्राकृतिक संसाधन, पर्यावरण और भूमि का उत्सव मनाने से संबंधित है. देखें, विक्टर दास (1991), 'फ़ॉरेस्ट्स ऐंड ट्राइबल ऑफ़ झारखण्ड', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 26, अंक 6 : 277.

[33] देखें, नित्या राव (2008): 187.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 764

तक यह माना जा सकता है कि यहाँ आर्थिक निर्धारणवादी सोच को चुनौती मिल रही है। अमिता बाविस्कर के अनुसार सांस्कृतिक राजनीति की शब्दावली से यह बात सामने आती है कि प्राकृतिक संसाधन लोगों के रोज़मर्रा के जीवन में कई तरह की भूमिकाएँ निभाते हैं। इसमें उत्पादन, वस्तुओं के स्रोत, रक्षक, धारक जैसे पहलू शामिल हैं।[34] हम ऊपर देख चुके हैं भूमि केवल एक आर्थिक सम्पत्ति नहीं है, बल्कि यह सामुदायिक अस्मिता से जुड़ी है। भूमि से जुड़ाव के विभिन्न पहलू हैं जो जीविका, सुरक्षा, अतीत, सामाजिक सम्मान, पूर्वजों की सम्पत्ति, पर्यावरण समरूपता जैसे रूपों में सामने आते हैं। इसलिए स्थानीय निवासी 'राज्य द्वारा प्रायोजित विकास' के विरोध में हैं। यह विकास 'उद्योगीकरण' के रूप में लोगों को उनके स्थानीय परिवेश से विस्थापित करता है।

इन आख्यानों से यह भी स्पष्ट होता है भूमि अधिग्रहण विधेयक का क्षेत्र विस्तारित होना चाहिए। इस पहलू को भी स्वीकार करना चाहिए कि ऐसी स्थिति भी हो सकती है जिसमें मुआवज़े या पुनर्वास का सवाल सामने ही न आये और लोग अपनी एक इंच ज़मीन देने के लिए तैयार न हों। क़ानून को ऐसी स्थिति स्वीकार करके ऐसी सूरत में जबरन भूमि अधिग्रहण पर रोक लगानी चाहिए। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस प्रकार के आख्यान अस्मिता एवं जुड़ाव के अधिक व्यापक अध्ययन के लिए नये आयाम खोलते हैं। हमें यह समझने की ज़रूरत है कि राज्य की मौजूदा संस्था विकास को एक उच्चस्तरीय आधुनिकीकरण के संदर्भ में देखती है। उसका विचार है कि इसके माध्यम से 'राष्ट्रीय' आत्मनिर्भरता प्राप्त होगी जो उसकी वर्तमान सम्प्रभुता को सुरक्षित रखेगी। लेकिन इस अवधारणा ने विकास के वैकल्पिक रास्तों को अपने सोच से हटा दिया। इस प्रक्रिया में सभी विरोधी विचारों को राज्य के हित के विरुद्ध देखा जाने लगा है और इस तरह एक नये राजकीय 'सरकारी राष्ट्रवाद' की प्रक्रिया शुरू हुई है जिसके तहत राज्य आधुनिकतावादी आत्मनिष्ठताओं से निर्देशित स्वतंत्र व्यक्तिवादी विचारधाराओं को तुष्ट कराना अपना उद्देश्य समझने लगा है। हमें यह समझना होगा कि एक ऐसी दृष्टि भी हो सकती है जो अनेक वैकल्पिक दृष्टियों से मिल कर भी बनी हो है। ज़ाहिर है कि राज्य की वर्तमान अवधारणा केवल एक रूप है और सामुदायिक अस्तित्व के और भी आधार ढूँढ़े जा सकते हैं।

संदर्भ

अरनब सेन और एस्थर लालहैरितपुई (2006), 'शेड्यूल्ड ट्राइब्ज़ (रिकॅगिनेशन ऑफ़ फ़ॉरेस्ट राइट्स बिल) : अ व्यू फ्रॉम एंथ्रोपोलॅजी ऐंड कॉल फ़ॉर डायलॉग', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 41, अंक 39.

अमिता बाविस्कर (सम्पा.), *कांटेस्टेड ग्राउंड्स, एसेज़ ऑन नेचर, कल्चर ऐंड पॉवर,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

'आफ्टर मित्तल...भूषण, द स्ट्रगल कंटीन्यूज',(2011) 3 दिसम्बर, : http://www.cnibss.org/infocus/potka.pdf, देखने की तारीख़ : 7 जनवरी. 2012.

एंटोनियो ग्राम्शी (1971), *सेलेक्शंस फ्रॉम द प्रिज़न नोटबुक्स,* अनुवाद : क्विंटिन होअरे और ज्यॉफ्री नॉवेल स्मिथ, इंटरनैशनल पब्लिशर्स, न्यूयॉर्क .

के. पी. शशि (2010), *गाँव छोड़ब नाही* (25 जून 2009) : http:/kafila.org/2009/6/25/gaon-chodab-nahin/,

---

[34] देखें, अमिता बाविस्कर (2008), 'इण्ट्रोडक्शन', अमिता बाविस्कर (सम्पा.), कांटेस्टेड ग्राउंड्स, एसेज़ ऑन नेचर, कल्चर ऐंड पॉवर, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली : 5–7.

18_anusha_Layout 1 10/17/2014 4:37 PM Page 765

देखने की तारीख़ : 21 जनवरी.

ग्लैडसन डुंगडुंग (2010क), 'आदिवासीज़ स्ट्रगल अगेंस्ट डिसप्लेसमेंट इन झारखण्ड', तेमियो तेमिनेन (सम्पा.), *आदिवासीज़ ऐट द क्रॉसरोड्स इन इण्डिया,* ईमेल पता : देखने की तारीख़ : 21 मई 2012.

गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया (2012), *द इण्डियन पीनल कोड, बेयर ऐक्ट,* युनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग, नयी दिल्ली.

जॉय रॉज टुडु (2011), *हुड सेंगल, झारखण्डी पहचान अस्मिता एवं अस्तित्व के लिए समर्पित,* झारखण्ड इनिशिएटिव्स डेस्क.

नित्या राव (2008), 'गुड वुमेन डू नॉट इनहेरिट लैण्ड', *पॉलिटिक्स ऑफ़ लैण्ड जेण्डर इण्डिया,* ऑरिएंट ब्लैकस्वान, नयी दिल्ली.

नीति माई (2007), *दिस इज़ ऑवर होमलैण्ड, अ कलेक्शन ऑफ़ ऐसेज ऑन द बिट्रेयल ऑफ़ आदिवासी राइट्स इन इण्डिया,* इक्वेशंस, बंगलुरु.

पिनाकी मजूमदार (2010), 'भूषण स्टील ऑफ़र्स विलेजर्स प्राइस सॉप फ़ॉर 300 एकड्स', द *टेलीग्राफ़,* कलकत्ता, 19 मई : http://www.telegraphindia.com/1100519/isp/jharkhand/story146451.jsp, देखने की तारीख़ : 10 जनवरी, 2011.

मार्टिना क्लॉस और सेबेस्टियन हार्टिग (2012), द *कोयल कारो हाइडेल प्रोजेक्ट : ऐन इमिरिकल स्टडी ऑफ़ द रेज़िस्टेंस मूवमेंट ऑफ़ द आदिवासी इन झारखण्ड/इण्डिया,* : http://www.adivasi-koordination.de/dokumente/Diplomarbeit KoelKoro summary.pdf, देखने की तारीख़ : 4 दिसम्बर, 2012.

'रूपिज 10500 करोड़ फ़ॉर पोटका' (2010), *टेलीग्राफ़,* कलकत्ता, 7 मई, ईमेल पता : http://www.telegraphindia.com/ 1100507/jsp/jharkhand/story 12421650.jsp, देखने की तारीख़ : 10 फ़रवरी, 2011.

वंदना शिवा (2011), 'द ग्रेट लैण्ड ग्रैब: इण्डिया'ज़ वॉर्स ऑन फ़ॉर्मर्स', जून : http://theglobalralm.com/2011/06/14/the-great-land-grab-indias-war-on-framers/, देखने की तारीख़ 19 सितम्बर, 2012.

विक्टर दास (1991), 'फ़ौरेस्ट्स ऐंड ट्राइबल ऑफ़ झारखण्ड', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 26, अंक 6.

शाहिद अमीन (1984), 'गाँधी ऐज़ महात्मा : गोरखपुर डिस्ट्रिक्ट, ईस्टर्न यूपी, 1921-2', रणजीत गुहा (सम्पा.), *सबाल्टर्न स्टडीज़ III, राइटिंग्ज़ ऑन द साउथ एशियन हिस्ट्री ऐंड सोसायटी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

सुज़ैना बी.सी. डिवाले (1992), *डिस्क्रोसेंज़ ऑफ़ एथिनिसिटी, कल्चर ऐंड प्रोटेस्ट इन झारखण्ड,* सेज, नयी दिल्ली.

सेंसस ऑफ़ इण्डिया 2011 (2011), प्रोविज़नल पॉप्यूलेशंस टोटल्स, पेपर 1 ऑफ़ 2011 झारखण्ड सीरीज़ 21, डायरेक्टरेट ऑफ़ सेंसस ऑपरेशंस, राँची.

स्मृति काक रामचंद्रन (2013), 'शेड्स ऑफ़ डिवलपमेंट', द *हिंदू,* दिल्ली, 5 सितम्बर.